Gyanshauryam, International Scientific Refereed Research Journal
© 2022 GISRRJ | Volume 5 | Issue 6 | ISSN : 2582-0095

महाकवि कालिदास के ग्रन्थों में पर्यावरण : एक अध्याय

ऋतु वर्मा
(एम ए, नेट संस्कृत), शोध छात्रा, संस्कृत विभाग, शिब्ली नेशनल पी0 जी0 कॉलेज आजमगढ़, उत्तर प्रदेश।

Article Info
Volume 5, Issue 5
Page Number : 108-114

Publication Issue :
September-October-2022

Article History
Accepted : 01 Oct 2022
Published : 15 Oct 2022

शोधसारांश – कालिदास ने अपने सभी नाटकों में प्रकृति के प्रति अपना आकर्षण प्रकट किया है। इनमें शाकुन्तल तो विशुद्ध प्रकृति के परिवेश में ही विकसित है पंचम और षष्ठ अंको में ही केवल राज प्रसाद की पृष्ठ–भूमि है अन्यथा सभी अंक प्राकृतिक वातावरण के ही है इन सबमें कालिदास ने प्रकृति की भूमिका मुक्त रूप से अभिव्यक्त की है।

मुख्य शब्द– कालिदास, पर्यावरण, संस्कृत, प्रकृति, ग्रन्थ।

पर्यावरण शब्द की निष्पत्ति परि आङ् पूर्वक वृ धातु से –ल्युट प्रत्यय पूर्वक होती है, पर्यावरण शब्द परि और आवरण इन दो शब्दों से मिलकर बना इन्ही दोनों शब्दों की सन्धि करने पर पर्यावरण शब्द सिद्ध होता है, परि शब्द का अर्थ है चारो ओर से, तथा आवरण शब्द का अर्थ है ढका हुआ, इस प्रकार पर्यावरण से आशय मानव अथवा जीवधारी के चारो ओर पाये जाने वाले उस आवरण से है जिसमें रहकर वह जीव विशेष रूप से अपना जीवन–यापन करता है। दूसरे शब्दों में पर्यावरण से आशय उस समूची भौतिक व जैविक व्यवस्था से है जिसमें जीवधारी निवास करते है तथा वृद्धि कर अपनी स्वाभाविक प्रवृत्तियों का विकास करते हैं।

इस सन्दर्भ में फिटिंग नामक पर्यावरणविद् लिखते हैं– "जीवों के पारिस्थितिकी कारको का योग पर्यावरण है।" ए0 जी0 टान्सले के शब्दों में– "प्रभावकारी दशाओं का वह सम्पूर्ण योग जिसमें जीवधारी निवास करते हैं, पर्यावरण कहलाता है।"

पर्यावरण तत्वों की विविधता को दृष्टिगत रखते हुये पर्यावरण के दो समूह है–

(1) भौतिक तत्व समूह – 1– वायुमण्डलीय तत्व, सूर्यप्रकाश, तापमान, वायु तत्व
2– स्थल जाति तत्व – मिट्टी, चट्टानें खनिज

(2) जैविक तत्व समूह – मानव, पशु–पक्षी, पेड़–पौधे सूक्ष्म जीवधारी

संस्कृत साहित्य में महाकवि कालिदास का नाम अग्रगण्य है काव्य रचना की चारूता हो या नाट्यकला की रमणीयता हो अथवा–गीतिकाव्य की सरसता हो सभी दृष्टियों से कालिदास की प्रतिभा सर्वातिशायिनी है, इसी कारण किसी आलोचक ने कहा है – प्राचीन कवियों की गणना के प्रसंग में कालिदास को कनिष्ठा अॅगुली पर अधिष्ठित किया गया, किन्तु आज भी उनके समान कवियों के अभाव से अनामिका नाम वाली दूसरी अंगुली कालिदास की तुलना हो सकती थी।

पूरा कवीनां गणनाप्रसंगे कनिष्ठिकाधिष्ठित कालिदासः।
अद्यापि तत्तुल्यकवेरभावादनामिका सार्थवती बभूव।।

Copyright: © the author(s), publisher and licensee Technoscience Academy. This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution Non-Commercial License, which permits unrestricted non-commercial use, distribution, and reproduction in any medium, provided the original work is properly cited

कालिदास के जन्मस्थान के विषय में विद्वानों में पर्याप्त मतभेद है, कश्मीर के विद्वान् उनको काश्मीरी सिद्ध करते हैं, बंगाल के विद्वान् बंगाली और उज्जैन के विद्वान् उज्जयिनी निवासी। मेघदूतम् में कालिदास ने उज्जयिनी के प्रति विशेष आग्रह और आदरभाव प्रदर्शित किया है, इससे यह ज्ञात होता है कि वे उज्जयिनी नगरी के सौन्दर्य, शिप्रा नदी और महाकाल मे मन्दिर का विशेष भावुकता के साथ वर्णन किया है। मेघदूतम् में यक्ष रास्ता टेड़ा होने पर भी 'श्रीविशाला विशाला' (उज्जयिनी) को देखने के लिए मेघ से आग्रह करता है।

कालिदास ने अवन्ती प्रदेश की भौगोलिक स्थिति का सूक्ष्म वर्णन मेघदूतम्' मे किया है वहॉ की छोटी से छोटी नदियों का नाम निर्देश तथा वर्णन किया है। उज्जयिनी के प्रति उनका विशेष पक्षपात तथा सूक्ष्म भौगोलिक परिचय के आधार पर कहा जा सकता है कि कालिदास यही के रहने वाले थे।

कुमारसंभवम् महाकाव्य का आरम्भ हिमालय वर्णन से होता है। इसमें हिमालय का जो वर्णन किया गया है उसे पढ़कर यह कहना पड़ता है कि कवि ने हिमालय को अवश्य देखा होगा। हिम, धातुमत्ता, निरन्तर होने वाली वृष्टि और पवन से शब्दायमान बात तो सामान्य बातें है परन्तु सरल वृक्षों के रस की सुगन्ध भी उनकी दृष्टि से नहीं बच पाई है। उसका वर्णन करते हुए कहते हैं–

कपोलकण्डूः करिभिर्विनेतुं, विघट्टितानां सरलद्रुमाणाम्।
यत्र स्नुतक्षीरतया प्रसूतः, सानूनि गन्धः सुरभीकरोति।।

जिस हिमालय पर्वत पर हाथियों द्वारा गण्डस्थल की खुजली मिटाने के लिए रगड़े गए देवदारू वृक्षों के दूध चूने से पैदा हुई गन्ध शिलाओं को सुगन्धित बना देती है।

हाथी अपनी खुजली मिटाने के लिए सरल वृक्षों पर अपना शरीर रगड़ते हैं उससे उनकी खाल उखड़ जाती हैं उसमें से एक प्रकार का रस निकलता है उसकी सुगन्ध से हिमालय के शिखर सुगंधित हो जाते हैं जिससे बहने वाली पवन का वर्णन निम्नवत् है–

भागीरथीनिर्झरसीकराणां वोढा मुहुः कम्पित देवदारूः।
यद्वायुरन्विष्टमृगैः किरातैरासेव्यते भिन्नशिखण्डिवर्हः।।

गंगाजी के झरने के जलविन्दुओं को धारण करने वाली, बारंबार देवदारू वृक्षों को कँपाने वाली तथा मोरों के पंखों का उल्लासित करने वाली जिस हिमालय की वायु मृगों को टूँटने वाले किरातों द्वारा सेवन की जाती है।

पंचम सर्ग में पार्वती के सिर से बहने वाली पानी की बूँदे का वर्णन अत्यन्त मनोहर है–

स्थिताः क्षणं पक्ष्मसु ताडिताधराः पयोधरोत्सेधनिपातचूर्णिता।
वलीषु तस्याः स्खलिताः प्रपेदिरे चिरेण नाभिं प्रथमोदबिन्दवः।।

वर्षाकाल की पहली बूँदे पार्वती की पलकों पर क्षणभर टिकी रहीं फिर वहाँ से गिरकर अधरों से टकराती हुई कठोर स्तनों पर पहुँच कर टुकड़े–2 होकर छिन्न–भिन्न हो गई। उसके पश्चात् उदर पर स्थित त्रिवली से होती हुई बहुत देर के बाद नाभि में पहुँच कर विलीन हो गई।

हिमांचल पर रात के समय जब वनेचर अपनी प्रियतमाओं के साथ विहार करते हैं उस समय वहाँ गुफाओं में चमकने वाली औषधियाँ विना तेल के सुरत–प्रदीपों का काम करती हैं।

वनेचराणां वनितासखानां दरीगृहोत्संग निषक्त भासः।
भवन्ति यत्रौषधयो रजन्यामतैलपूराः सुरतप्रदीपाः।।

कालिदास की निरीक्षण शक्ति अत्यन्त सूक्ष्म तथा पैनी है उनका प्रकृति वर्णन वैज्ञानिक तथा प्रतिभामण्डित है इसके रमणीय उदाहरण सर्वत्र दिखाई पड़ते हैं। पर्वत के झरनों पर जब दिन के समय सूर्य की किरणें पड़ती हैं तब उनमें इन्द्रधनुष चमकने लगता है, परन्तु सन्ध्या के समय सूर्य के पश्चिम ओर लटक जाने पर उनमें इन्द्रधनुष नहीं दिखाई पड़ता। इस वैज्ञानिक तथ्य तथा निरीक्षण चातुरी का प्रत्यक्ष वर्णन कालिदास ने इस पद्य में किया है–

सीकरव्यतिकरं मरीचिभिर्दूरयत्यवनते विवस्वति।
इन्द्रचापपरिवेषशून्यतां निर्झरास्तव पितुर्व्रजन्त्यमी।।

कालिदास के प्रकृति वर्णन में अनेक वैशिष्ट्य है– कवि मानव–सौन्दर्य की तीव्रता तथा यथार्थता के अभिव्यंजन के निमित्त प्रकृति का आश्रय लेता है, तो कहीं–कहीं प्रकृति के ऊपर मानव भावों तथा व्यापारों का ललित आरोप करता है, कहीं प्रकृति और मानव के बीच परस्पर गाढ मैत्री, सहज सहानुभूति तथा रमणीय रागात्मक वृत्ति का सम्बन्ध जोड़ता है तो कहीं प्रकृति को भगवान् की ललित लीला का निकेतन मानकर आनंद से विभोर हो जाता है। कुमारसम्भवम् में सर्वप्रथम हिमालय को पुरूष रूप देने के लिए उसके एक कुटुम्ब की कल्पना की गई है, जिसमें स्त्री पुत्र और कन्या है। पार्वती के मधुर मुस्कान की शोभा वनस्पति–जगत् में ही कवि को मिलती है। यह अनूठा वर्णन कवि के गाढ अनुवीक्षण का परिचय देता है।

वह कहता है कि यदि उजला फूल ईषद् रक्त नये पल्लव पर रखा जाय और यदि मोतीलाल मूँगो पर निहित हो तभी ये दोनों पार्वती के लाल होठों पर फैली हुई मधु मुस्कराहट की समता पा सकते है–

पुष्पं प्रवालोपहितं यदि स्यान्मुक्तफलं वा स्फुटविद्रुमस्थम्।
ततोऽनुकुर्याद्विशदस्य तस्यास्तामौष्ठपर्यस्तरूचः स्मितस्य।।

रघुवंश महाकाव्य का आरम्भ दिलीप की कथा से होता है दिलीप ने कामधेनु की पुत्री नन्दिनी गाय की सेवा करके उससे पुत्र पाने का वर पाया पुत्र का नाम रघु पड़ा।

राजा दिलीप प्रजा से जो कर लेते थे वह कर इन्द्र को प्रसन्न कर वर्षा बरसाने के निमित्त यज्ञ में लगा देते हैं।

प्रजानामेव भूत्यर्थं स ताम्यो बलिमग्रहीत्।
सहस्रगुणमुत्स्रष्टुमादत्ते हि रसं रविः।।

यज्ञ से प्रकृति अत्यन्त शुद्ध होती थी तथा प्रजा को वर्षा होने से अच्छी फसल की प्राप्ति होती थी।

पुत्र प्राप्ति के लिए जब राजा दिलीप वसिष्ठ जी के आश्रम पर पहुँचे तो वहाँ अग्निहोत्र का धुआँ पवन के कारण चारों ओर फैलकर अतिथियों को पवित्र कर रहा है।

रघुवंश का तेरहवाँ सर्ग सागर के वर्णन से प्रारम्भ होता है जो कई श्लोकों में समाप्त होता है। सागर अधरपान भी विचित्र है। उसकी पत्नियाँ नदियाँ जब अपने मुख को अधरपान हेतु सागर को अर्पण करती हैं तो समुद्र उनके अधरों का पान करता ही है अपने तरंगरूपी अधरों को नदियों के मुख में दे देता है। इस प्रकार समुद्र पत्नी के अधर का पान तो करता है अपने अधर को भी पिलाता है। यह कवि का प्रकृति में मानवीय भाव की कल्पना है।

मुखार्पणेषु प्रकृतिप्रगल्भाः स्वयं तरंग धरदानदक्षः।
अनन्यसामान्यकलत्रवृत्तिः पिबत्यसौ पाययते च सिन्धू।।

ऋतुसंहार में मानव और प्रकृति दोनों का चित्रण उनके उद्दीपक रूप में हुआ है। कालिदास ने ग्रीष्म ऋतु के वर्णन के साथ काव्य का आरम्भ किया है। विंध्य के वनांचल में तपती धूप और दरकती धरती के यथार्थ

चित्रण और वन्य प्राणियों के प्रति कवि की गहरी संवेदना प्रमाणित करती है कि कालिदास इस धरती के कवि हैं।

वर्षा के आते ही विंध्य के उन वनों की सुषमा का मन हर लेती है, जो हरी–2 दूब से भरे हुए है, तथा जिनमें पेड़ों की डालियाँ कोपलों से लद गयी है–

तृणेत्करैरूद्गतकोमलां कुरैर्विचित्रनीलैर्हरिणीमुखक्षतैः।
वनानि वैन्ध्यानि हरन्ति मानसं विभूषितान्युद्गतपल्लवैद्रुमैः।।

शरद् ऋतु के वर्णन में कालिदास ने रूपकों का विपुल प्रयोग किया है, प्रकृति की उपमा मानव से और मानव की उपमा प्रकृति से दी है–

चंचन्मनोज्ञशफरीरशनाकलापाः पर्यन्तसंस्थितसिताण्डजपंक्तिहाराः।
नद्यो विशालपुलिनान्तनितम्बबिम्बा मन्दं प्रयान्ति समदाः प्रमदा इवाध।।

शरद् ऋतु मे नदियाँ उसी प्रकार धीमे–धीमे बह रही हैं, जैसे कमरधनी और माला पहने हुए बड़े नितम्बों वाली कामिनियाँ जा रहीं हो, उछलती हुई शफरी मछलियाँ उन नदियों की कमरधनी है, तट पर बैठे श्वेत पक्षियों की पंक्तियाँ मालाएँ हैं तथा ऊँचे–ऊँचे रेतीले टीके उनके नितम्ब है। शरद्–वर्णन के आरम्भ और अन्त दोनों स्थलों पर कवि ने कामिनी का रूपक दिया है।

शिशिर–वर्णन में कवि कहते हैं कि इस ऋतु में अब न तो किसी को चन्द्रमा की किरणों से शीतल किया हुआ चन्दन का लेप अच्छा लगता है, न शरद् की चन्द्रमा के समान उजली छतें अच्छी लगती है और न घनी ओस शीतल वायु ही किसी को भाता है –

न चन्दनं चन्द्रमरीचिशीतलं न हर्म्यपृष्ठं शरदिन्दु निर्मलम्।
न वायवः सान्द्रतुषारशीतला जनस्य चित्तं रमयन्ति साम्प्रतम्।।

प्रकृति का मानवीकरण करते हुए कवि ने वर्षा की फुहार से हर्षित वन को कंदब के फलों से रोमांचित होता देखा है, हवा के झकोरों में नृत्य के साथ थिरकता पाया है, केतकी के फूलों की नोकों से हँसता अनुभव किया है –

मुदित इव कदम्बैर्जातपुष्पैः समन्तात्
पवनचलितशाखैः शाखिभिर्नृत्यतीव।
हसितुमिव विघत्ते सूचिभिः केतकीनां
नवसलिलनिषेकाच्छिन्न तापो वनान्तः।।

यदि वर्षा ऋतु कवि को सम्राट प्रतीत होती है, तो शरद् नववधू के रू॰ में झलक दिखाती है। वह कास के सफेद फूलों की ओढ़नी पहने है, उसकी फूलों की सुंदर आँखें खिली हुई है हंसो की मतवाली कूजन की ध्वनि से वह पायजेब बजा रही है, तथा पकते धान के झुक आये पौधों से उसकी देहलता झुकी–झुकी दिखती है।

मेघदूतम् खण्ड काव्य का प्रारम्भ रामगिरि पर्वत के वर्णन से होता है। प्रकृति प्रबन्ध मेघदूत में महाकवि कालिदास ने अचेतन मेघ को दूत बनाया है। यक्ष मेघ के द्वारा संदेश भेजने के लिए तत्पर हो जाता है। 'मेघ' तो स्वयं प्रकृति का ही अंग है –

धूमज्योतिः सलिलमरूतां सन्निपातः क्व मेघः।
सन्देशार्थाः क्व पटुकरणैः प्राणिभिः प्रापणीयाः।।

मेघ का निर्माण धुएँ, अग्नि, जल, वायु इन चारो तत्वों से होता है। यक्ष मेघ से अपनी प्रिया की नगरी अलका तक का मार्ग बताता है और कहता है कि कुछ विशिष्ट स्थानों पर थोड़ा विश्राम करके अलका तक जाना ये विशेष स्थल हैं – मालप्रदेश (मालवा), आम्रकूट पर्वत (अमरकष्टक), नर्मदा नदी, विदिशा नगरी, नीचैर्गिरि, निर्विन्ध्या नदी, उज्जयिनी, उज्जयिनी में महाकाल का मन्दिर, सिप्रा नदी, देवगिरि, चर्मण्वती नदी, कुरूक्षेत्र, सरस्वती नदी कनखल, गंगा नदी, हिमाचल पर्वत, क्रौच रन्ध्र (नीतिमाणा दर्रा), कैलाश और अलका नगरी।

मेधूदतम् में प्रकृति केवल दृश्य प्रकृति न होकर मानवीय भावों, विचारों और अनुभूतियों से संपन्न एक अभिनेत्री है जो अपने हाव–भाव लास्य, प्रणय व्यापार, कमनीयता से सभी सहृदयों को आकृष्ट करती है। मेघ चेतन इन से अधिक सक्रिय, रसिक, स्नेही, आज्ञाकारी और प्रत्युत्पन्न मति है। प्रकृति में मानवीय भावनाओं का आरोप करते हुए कवि मेघ से कहता है कि तुम रामगिरि से विदाई लो यह तुम्हारे वियोग में गर्म आँसू बहाकर अपना प्रेम प्रकट करता है। मेघ और पर्वत का सौहार्द कितना मनोरम है –

काले–काले भवति भवतो यस्य संयोगमेत्य।
स्नेहव्यक्तिश्चिरविरहजं मुंचतो वाष्पमुष्णम्।।

मेघ और नदियों का नायक और नायिका के रूप में चित्रण किया गया है। मेघ नदियों के हावभाव पर आकृष्ट होता है, उससे प्रेम करता है उसके साथ रमण करता है और उनकी कामना पूर्ण करता है। निर्विन्ध्या नदी के हावभावों से आकृष्ट होकर मेघ उनसे प्रेम क्रीडा करता है–

निर्विन्ध्यायाः पथि भव रसाभ्यन्तरः सन्निपत्य।
स्त्रीणामद्यं प्रणयवचनं विभ्रमो हि प्रियेषु।।

प्रकृति के सभी उपादानों के साथ कालिदास का रागात्मक सम्बन्ध है। ये उपादान हैं – गिरि, वन, उपवन, नदी, निर्झर, पुष्प, लता, वृक्ष, पशु, पक्षी आदि। ऋषियों के आश्रम के वर्णन में इन सभी की उपस्थिति के कारण कवि प्रसंगों में भावापन्न हो उठते है। रामगिरि का आश्रम संक्षेप के कारण केवल 'स्निग्धछायातक' और ' जनकतनयास्नानपुण्योदकेषु' के रूप में वर्णित होकर बहुत से अर्थो को ध्वनित करता है।

वर्षा के आरम्भ में मेघों का उमड़ना मंद पवन का संचरण चातकों का बोलना, हंसो का पंक्तिबद्ध होकर उड़ना, नदियों की क्षीणता, इन्द्रधनुष का दृश्य, मालक्षेत्र में जुते हुए खेतों की सोंधी सुगंध इत्यादि का वर्णन पूर्व मेघ में अत्यधिक मनोयोग से कवि ने किया है। आषाढ़ मास में आदर्श भारतीय ग्राम की स्थिति के वर्णन में दशार्ण देश का यह चित्र कवि ने उपस्थित किया है –

पाण्डुच्छायोपवनवृत्तयः केतकैः सूचिभिन्नै
र्नीडारम्भैर्गृहवलिभुजामाकुल – ग्रामचैत्याः।
त्वय्यासने परिणतफलश्यामजम्बूवनान्ताः
सम्पत्स्यन्ते कतिपयदिनस्यायिहंसा दशार्णाः।।

विश्व साहित्य में विख्यात इस नाटक में कालिदास ने अपने नाट्य कौशल का प्रकर्ष दिखाया है एक सामान्य कथानक को परिवर्तित करके कवि ने नाटकीय रूप प्रदान कर विश्ववन्ध बनाया है (जर्मन महाकवि गेटे ने इस नाटक के जार्ज फार्स्टर–कृत रूपान्तर (1791ई0) पढ़कर ही इसके विषय में जो समीक्षापूर्ण प्रशस्ति लिखी थी वह डॉ0 वामन विष्णु मिराशी के शब्दों मे इस प्रकार है–

वासन्तं कुसुमं फलं च युगपद् ग्रीष्मस्य सर्वं च यद्
यच्चान्यन्मनसो रसायनमतः सन्तर्पणं मोहनम्।
एकीभूतमभूतपूर्वमथवा स्वर्लोकभूलोकयो –

रैश्रर्यं यदि वान्छसि प्रियसखे शाकुन्तलं सेव्यताम्।।

इसमें बसन्त और ग्रीष्म का, स्वर्ग और पृथ्वी का ऐसा अभूतपूर्व समन्वय है जो मन को परम तृप्ति प्रदान करता है।)

कालिदास ने अपने सभी नाटकों में प्रकृति के प्रति अपना आकर्षण प्रकट किया है। इनमें शाकुन्तल तो विशुद्ध प्रकृति के परिवेश में ही विकसित है पंचम और षष्ठ अंको में ही केवल राज प्रसाद की पृष्ठ–भूमि है अन्यथा सभी अंक प्राकृतिक वातावरण के ही है इन सबमें कालिदास ने प्रकृति की भूमिका मुक्त रूप से अभिव्यक्त की है। शकुन्तला के सौन्दर्य में ही प्रकृति के विविध उपादान उपमान के रूप में जटित हैं –

अधरः किसलयरागः कोमलविटपानुकारिणौ बाहू।
कुसुममिव लोभनीयं यौवनमंगेषु सन्द्धम्।।

शाकुन्तला का साहचर्य पशुओं, पक्षियों, और वनस्पतियों से है। मानव तथा प्रकृति का ऐसा सामन्जस्य आश्रम संस्कृति का उत्कर्ष प्रकट करता है। तपस्वी कण्व को शकुन्तला की चिन्ता के साथ बनन्योत्सना लता की भी चिन्ता है कि वे दोनों किस पर आलम्बित होगी। वे निश्चिन्त हो गये कि दोनों ने अपना–अपना आश्रय पा लिया –

संकल्पितं प्रथममेव मया तेवार्थे, भर्तारमात्मसदृशं सुकृतैगीता त्वम्।
चूतेन संश्रितवती नवमालिकेय– मस्यामहंत्वयि च सम्प्रतिवीतचिन्तः।।

शाकुन्तलम् के चतुर्थ अंक में कालिदास ने प्रकृति और मनुष्य को एक घनिष्ठ प्रेम बन्धन से बाँधा हुआ दिखाया है। आश्रम की बालिका शकुन्तला को अलंकृत करने के लिए प्रकृति स्नेह से आभूषण वितरित करती है।

मृग शावक शकुन्तला को जाने नहीं देता प्रकृति पत्तों के गिरने के व्याज से आँसू बहाती है। प्रकृति तथा मनुष्य का ऐसा सहानुभूति पूर्ण वर्णन संस्कृत साहित्य में विरल है–

पातुं न प्रथमं व्यवस्यति जलं युष्मास्वपीतेषु या
नाढते प्रियमण्डनाऽपि भवतां स्नेहेन या पल्लवम्।
आद्ये वः कुसुमप्रसूतिसमये यस्या भवत्युत्सवः
सेयं याति शकुन्तला पतिगृहं सर्वेश्नुज्ञायताम्।।

प्रथम अंक में प्रस्तावना में ग्रीष्म ऋतु के दिनों का वर्णन करते हुए सूत्रधार कहता है –

सुभगसलिलावगाहाः पाटलसंसर्गसुरभिवनवाताः।
प्रच्छायसुलभनिद्रा दिवसाः परिणामरमणीयाः।।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची –

1. पर्यावरण एवं पारिस्थितिकी – महेश कुमार वर्णवाल
2. संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास – डॉ कपिलदेव द्विवेदी आचार्य
   शान्ति–निकेतन, ज्ञानपुर (भदोही) उ0 प्र0,
3. नाट्यशास्त्र–भरत, कृष्णदास अकादमी वाराणसी
4. कुमारसम्भवमम् – डॉ0 राकेश शास्त्री चौखम्भा ओरियन्टालिया

5. रघुवंशम् – डॉ0 श्रीकृष्ण मणि त्रिपाठी
6. रघुवंशप्रकाश – डॉ0 अमलदार नीहार
7. ऋतुसंहारकाव्यम् – आचार्य बाबू लाल शुक्ल शास्त्रिणा कालिदास अकादमी उज्जैन
8. मेघदूतम् – डॉ0 रमाशंकर त्रिपाठी विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी
9. मेघदूतम् – वासुदेवशरण अग्रवाल
10. अभिज्ञानशाकुन्तलम् – डॉ0 कपिल देव द्विवेदी वाराणसी
11. अभिज्ञानशाकुन्तलम् – डॉ0 वासुदेव कृष्ण चतुर्वेदी महालक्ष्मी प्रकाशन, आगरा –2